निजानन्द ही भोग नित्य, अविनाशी वैभव अपना।
सारभूत है, व्यर्थ ही मोही, देखे झूठा सपना॥
यों ही चिन्तन चले हृदय में, आप वर्तते ज्ञाता।
क्षण-क्षण बढ़ती भाव-विशुद्धि, उपशमरस छलकाता॥
एक वर्ष छद्मस्थ रहे प्रभु, हुआ न श्रेणी रोहण।
चक्री शीश नवाया तत्क्षण, हुआ सहज आरोहण॥
नष्ट हुआ अवशेष राग भी, केवल-लक्ष्मी पाई।
अहो अलौकिक प्रभुता निज की, सब जग को दरशाई॥
हुए अयोगी अल्प समय में, शेष कर्म विनशाए।
ऋषभदेव से पहले ही प्रभु, सिद्ध शिला तिष्ठाए॥
आप समान आत्मदृष्टि धर, हम अपना पद पावें।
भाव नमन कर प्रभु चरणों में, आवागमन मिटावें॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

बाहुबली भगवान, दर्शाया जग स्वार्थमय।
जागे आतमज्ञान, शिवानन्द मैं भी लहूँ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री वीतराग पूजन

(दोहा)

शुद्धातम में मगन हो, परमातम पद पाय।
भविजन को शुद्धात्मा, उपादेय दरशाय॥
जाय बसे शिवलोक में, अहो अहो जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, आयो पूजन काज॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

ज्ञानानुभूति ही परमामृत है, ज्ञानमयी मेरी काया।
है परम पारिणामिक निष्क्रिय, जिसमें कुछ स्वाँग न दिखलाया॥
मैं देख स्वयं के वैभव को, प्रभुवर अति ही हर्षाया हूँ।
अपनी स्वाभाविक निर्मलता, अपने अन्तर में पाया हूँ॥
थिर रह न सका उपयोग प्रभो, बहुमान आपका आया है।
समतामय निर्मल जल ही प्रभु, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय जन्मजरामृत्यु-रोगविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

है सहज अकर्त्ता ज्ञायक प्रभु, ध्रुव रूप सदा ही रहता है।
सागर की लहरों सम जिसमें, परिणमन निरन्तर होता है॥
हे शान्ति सिन्धु ! अवबोधमयी, अद्भुत तृप्ति उपजाई है।
अब चाह दाह प्रभु शमित हुई, शीतलता निज में पाई है॥
विभु अशरण जग में शरण मिले, बहुमान आपका आया है।
चैतन्य सुरभिमय चन्दन ही, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अब भान हुआ अक्षय पद का, क्षत् का अभिमान पलाया है।
प्रभु निष्कलंक निर्मल ज्ञायक अविचल अखण्ड दिखलाया है।
जहाँ क्षायिकभाव भी भिन्न दिखे, फिर अन्यभाव की कौन कथा।
अक्षुण्ण आनन्द निज में विलसे, निःशेष हुई अब सर्व व्यथा॥
अक्षय स्वरूप दातार नाथ, बहुमान आपका आया है।
निरपेक्ष भावमय अक्षत ही, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

चैतन्य ब्रह्म की अनुभूतिमय, ब्रह्मचर्य रस प्रगटाया।
भोगों की अब मिटी वासना, दुर्विकल्प भी नहीं आया॥
भोगों के तो नाम मात्र से भी, कम्पित मन हो जाता।
मानों आयुध से लगते हैं, तब त्राण स्वयं में ही पाता॥
हे कामजयी निज में रम जाऊँ, यही भावना मन आनी।
श्रद्धा सुमन समर्पित जिनवर, कामबुद्धि सब विसरानी॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

निज आत्म अतीन्द्रिय रस पीकर, तुम तृप्त हुए त्रिभुवनस्वामी।
निज में ही सम्यक् तृप्ति की, विधि तुम से सीखी जगनामी॥
अब कर्त्ता भोक्ता बुद्धि छोड़, ज्ञाता रह निज रस पान करूँ।
इन्द्रिय विषयों की चाह मिटी, सर्वांग सहज आनन्दित हूँ॥
निज में ही ज्ञानानन्द मिला, बहुमान आपका आया है।
परम तृप्तिमय अकृतबोध ही, पूजन योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

मोहान्धकार में भटका था, सम्यक् प्रकाश निज में पाया।
प्रतिभासित होता हुआ स्वज्ञायक, सहज स्वानुभव में आया॥
इन्द्रिय बिन सहज निरालम्बी प्रभु, सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगटी।
चिरमोह अंधेरी हे जिनवर, अब तुम समीप क्षण में विघटी॥
अस्थिर परिणति में हे भगवन् ! बहुमान आपका आया है।
अविनाशी केवलज्ञान जगे, प्रभु ज्ञानप्रदीप जलाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

निष्क्रिय निष्कर्म परम ज्ञायक, ध्रुव ध्येय स्वरूप अहो पाया।
तब ध्यान अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, विघटी परपरिणति की माया॥
जागी प्रतीति अब स्वयं सिद्ध, भव भ्रमण भ्राँति सब दूर हुई।
असंयुक्त निर्बन्ध सुनिर्मल, धर्म परिणति प्रकट हुई॥
अस्थिरताजन्य विकार मिटें, मैं शरण आपकी हूँ आया।
बहुमानभावमय धूप धरूँ, निष्कर्म तत्त्व मैंने पाया॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

है परिपूर्ण सहज ही आतम, कमी नहीं कुछ दिखलावे।
गुण अनन्त सम्पन्न प्रभु, जिसकी दृष्टि में आ जावे॥
होय अयाची लक्ष्मीपति, फिर वाँछा ही नहीं उपजावे।
स्वात्मोपलब्धिमय मुक्तिदशा का सत्पुरुषार्थ सु प्रगटावे॥
अफलदृष्टि प्रगटी प्रभुवर, बहुमान आपका आया है।
निष्काम भावमय पूजन का, विभु परमभाव फल पाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अविचल अनर्घ्य पद पाया, सहज प्रमोद हुआ भारी।
ले भावार्घ्य अर्चना करता, निज अनर्घ्य वैभव धारी॥
चक्री इन्द्रादिक के पद भी, नहिं आकर्षित कर सकते।
अखिल विश्व के रम्य भोग भी, मोह नहीं उपजा सकते॥
निजानन्द में तृप्तिमय ही, होवे काल अनन्त प्रभो!।
ध्रुव अनुपम शिव पदवी प्रगटे, निश्चय ही भगवन्त अहो !॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(छन्द-चामर तर्ज- मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक...)

प्रभो आपने एक ज्ञायक बताया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥टेक॥
यही रूप मेरा मुझे आज भाया।
महानन्द मैंने स्वयं में ही पाया॥
भव-भव भटकते बहुत काल बीता।
रहा आज तक मोह-मदिरा ही पीता॥
फिरा ढूँढ़ता सुख विषयों के माहीं।
मिली किन्तु उनमें असह्य वेदना ही॥
महाभाग्य से आपको देव पाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥१॥
कहाँ तक कहूँ नाथ महिमा तुम्हारी।
निधि आत्मा की सु दिखलाई भारी॥
निधि प्राप्ति की प्रभु सहज विधि बताई।
अनादि की पामरता बुद्धि पलाई॥
परमभाव मुझको सहज ही दिखाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥२॥
विस्मय से प्रभुवर था तुमको निरखता।
महामूढ़ दुखिया स्वयं को समझता॥

स्वयं ही प्रभु हूँ दिखे आज मुझको।
महा हर्ष मानों मिला मोक्ष ही हो।।
मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ अनुभव में आया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया।।३।।
अस्थिरता जन्य प्रभो दोष भारी।
खटकती है रागादि परिणति विकारी।।
विश्वास है शीघ्र ये भी मिटेगी।
स्वभाव के सन्मुख यह कैसे टिकेगी?।।
नित्य-निरंजन का अवलम्ब पाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया।।४।।
दृष्टि हुई आप सम ही प्रभो जब।
परिणति भी होगी तुम्हारे ही सम तब।।
नहीं मुझको चिन्ता मैं निर्दोष ज्ञायक।
नहीं पर से सम्बन्ध मैं ही ज्ञेय ज्ञायक।।
हुआ दुर्विकल्पों का जिनवर सफाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया।।५।।
सर्वांग सुखमय स्वयं सिद्ध निर्मल।
शक्ति अनन्तमयी एक अविचल।।
बिन्मूर्ति चिन्मूर्ति भगवान आत्मा।
तिहूँ जग में नमनीय शाश्वत चिदात्मा।।
हो अद्वैत वन्दन प्रभो हर्ष छाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया।।६।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

दोहा– आपहि ज्ञायक देव है, आप आपका ज्ञेय।
अखिल विश्व में आप ही, ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।।

श्री जिनवाणी पूजन

(वीरछन्द)

अनेकान्तमय तत्त्व बताती, स्याद्वादमय जिनवाणी।
मंगलमय शुद्धात्म दिखाती, नय प्रमाण से जिनवाणी।।
भक्ति भाव से पूजा करते, मन में अति हर्षाता हूँ।
अन्तर्लीन परिणति होवे, यही भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द-रोला)

भेदज्ञानमय जल लेकर में पूजा करता।
शाश्वत ज्ञानानन्दमय आतम दृष्टि धरता।।
जन्म-जरा-मृत दोष सहज विनशावनहारी।
जिनवाणी भव्यों की माता सम उपकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

क्षमाभावमय चन्दन लेकर जजूँ सदा ही।
क्रोधादिक मम चित्त माँहिं उपजें न कदा ही।।
असहनीय भव ताप सहज विनशावन हारी।।
जिनवाणी भव्यों की माता सम उपकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल सरल भाव अक्षत से पूजा करता।
क्षत्-विक्षत् संयोगी भाव सहज ही तजता।।
अक्षय पद पाऊँ होकर चैतन्य विहारी।।जिनवाणी...।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि.स्वाहा।

परम शीलमय सुमनों से पूजूँ हर्षाऊँ।
महाक्लेशमय कामादिक दुर्भाव नशाऊँ।।
ब्रह्म भावना सदा सभी को मंगलकारी।।जिनवाणी...।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।